



First Author Details :

प्रभजोत कौर

रिसर्च स्कॉलर(हिन्दी) , कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा(पंजाब)



Second Author Details :

विनोद कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर , कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा(पंजाब)

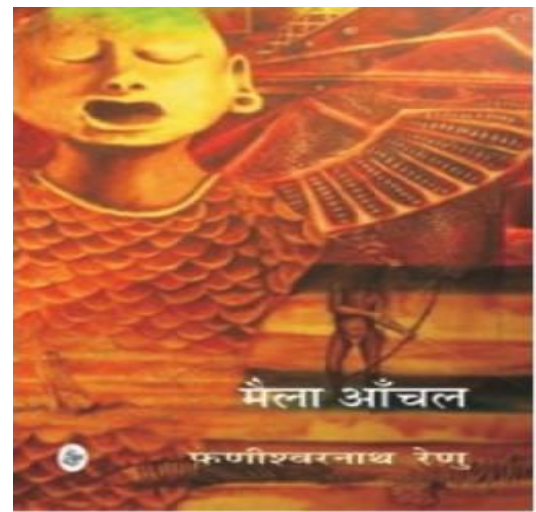
प्रस्तावना:

समाज, साहित्य और राजनीति का आपस में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। यह एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं, जिस प्रकार शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है। समाज को साहित्य से और राजनीति से पृथक नहीं किया जा सकता। किसी भी देश और समाज की सभ्यता तथा संस्कृति का परिचय उस देश के साहित्य से ही प्राप्त हो सकता है। साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं में युग की समस्त जटिलताओं, राजनीतिक और अन्य समस्याओं को जीवन से ग्रहण कर हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

‘मैला आँचल’ एक सामाजिक व राजनीतिक उपन्यास है। उपनिवेशवाद से मुक्ति और नए राष्ट्र के निर्माण का संक्रमणकालीन दौर इस उपन्यास में अत्यंत विस्तार से और गहराई से चित्रित हुआ है। अतः ‘मैला आँचल’ का अध्ययन और विश्लेषण राजनीतिक व सामाजिक आधारों पर ही किया जाना तर्कसंगत है। शायद यह कहना अधिक सटीक होगा कि ‘मैला आँचल’ उपन्यास की आत्मा को इस उपन्यास में ‘रेणु’ द्वारा चित्रित सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों की पड़ताल के माध्यम से ही पकड़ा जा सकता है। उपन्यासकार ‘रेणु’ ने अपने जीवन के व्यावहारिक कर्म व अपने लेखन या सृजन धर्मिता दोनों में ही गहरे रूप से सामाजिक व राजनीतिक सरोकारों से जुड़े हुए व्यक्तित्व की भूमिका निभाई है।

मैला आँचल एक आँचलिक उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार ‘रेणु’ जी का उद्देश्य मेरीगंज आँचल की समस्त हलचल को चित्रित करना रहा है। सन 1942 से लेकर देश के स्वतंत्र होने तक जो राष्ट्रीय आन्दोलन चला तथा जो पार्टियां मुख्य रूप में सामने आईं, उनके कार्यों का सपष्ट चित्रण ‘रेणु’ जी ने अपने उपन्यास ‘मैला आँचल’ में किया है। राजनैतिक हलचल में मेरीगंज गाँव एक प्रतीक के रूप में सामने आता है क्योंकि समस्त देश के प्रत्येक आँचल में इसी प्रकार की राजनैतिक हलचल रही थी ‘मैला आँचल’ उपन्यास का आरंभ ही राजनीतिक पृष्ठभूमि से होता है और उपन्यास का अंत भी राजनीतिक घटनाक्रम के एक दुखांत मोड़ से होता है। उपन्यास के राजनीतिक घटनाक्रम की अनेक परतें व अनेक स्तर चित्रित हुए हैं। इसी कारण ‘मैला आँचल’ उपन्यास को गहरे रूप में राजनीतिक उपन्यास भी कहा जाता है। मोटे तौर पर राजनीतिक संदर्भ में उपन्यास में जिन स्थितियों का चित्रण हुआ है उन्हें क्रमवार इस प्रकार रख सकते हैं- ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था, भारतीय स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय विभिन्न राजनीतिक दल व प्रवृत्तियां, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक राजनीतिक दल और एक शासक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रण, भारतीय ग्रामीण समाज के वर्ग और वर्ण के अंतर्विरोधों का चित्रण, स्वतंत्रता पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर शासन व्यवस्था का चित्रण।

1948 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत कांग्रेसी मंत्रिमंडल बन गए थे और 15 अगस्त 1947 के विभाजन और सत्ता परिवर्तन के उपरांत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से प्रत्यक्षतः हट जाने, किंतु शासन व्यवस्था उसी ब्रिटिश व्यवस्था



के रूप में बनी रहने की स्थिति में स्वातंत्र्योत्तर शासन व्यवस्था का आरंभ हुआ। दोनों ही स्थितियां एक संक्रमणकालीन दौर की उपज है और इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अ ये हमारे देश की राजनीति के व्यवस्था भारत में स्थापित की, 1948 में क्या हम उस व्यवस्था की गुलामी से भी मुक्त हुए या सिर्फ चमड़ी का रंग बदला? गोरे शासकों के स्थान पर भूरी या काली चमड़ी के लोगों ने शासना बागडोर एक 'स्वतंत्र' राष्ट्र के रूप में संभाली? वस्तुतः व्यवस्था वहीं बनी रही, जो उपनिवेशवाद ने अपनी जरूरतों के लिए निर्मित की थी। क्या एक ही व्यवस्था उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद से मुक्ति प्राप्त राष्ट्र- दोनों की आकांक्षाओं या हितों की पूर्ति कर सकती है? यह ऐसा जरूरी सवाल है, जिसे राष्ट्रीय आज़ादी के शोर में दबा दिया जाता है। लेकिन रेणु ने 'मैला आंचल' में ऐसे सवालों से बचने की कोशिश न करके, उन्हें पूरी ईमानदारी व सृजनशीलता से स्वतंत्रता प्राप्ति के सात वर्ष बाद ही उभार दिया था। लेकिन रेणु द्वारा सृजनात्मक रूप से उपस्थित किए गए यथार्थ सवालों को उस समय उपन्यास की आंचलिकता के रूप में छिपा दिया गया। लेकिन अब जबकि देश की राजनीतिक स्थितियां एक बड़ा मुद्दा व क्रूर रूप ग्रहण कर रही है और देश न सिर्फ आर्थिक स्तर पर एक नव-औपनिवेशिक परतंत्रता की ओर बढ़ रहा है, बल्कि तथाकथित जनतांत्रिक व्यवस्था की पोल भी खुलती नज़र आ रही है तो 'मैला आंचल' का खुली दृष्टि से अध्ययन आवश्यक हो गया है। रेणु ने तो उसी समय ही औपनिवेशिक व्यवस्था को बिना परिवर्तन के अपनाने के खतरों से आगाह कर दिया था।

ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था का जो पहला लक्षण उपन्यास के आरंभ में ही चित्रित हुआ है- "औपनिवेशिक शासन की भयंकर दमन नीति। इस दमन नीति का देश के सुदूर गांवों तक में इतना आतंक है कि मिलेटरी आने की अफवाह मात्र से गांव वाले स्वतंत्रता सेनानी बालदेव को रस्सी से बांध लेते हैं अर्थात् दमन की नीति के आतंक से जनमानस की मानसिक गुलामी भी गहरे में जड़े पकड़ लेती हैं। यह बात अलग है कि जब शासकों की ओर से बालदेव को सम्मान दिया जाता है तो गांव वालों के लिए वह पूज्य हो जाता है। यह सिक्के का दूसरा पहलू भी मानसिक गुलामी का ही दूसरा रूप है। जनमानस व जन को शारीरिक व मानसिक रूप से गुलाम बनाना- यह ब्रिटिश औपनिवेशिक दमन नीति का उद्देश्य था।"[1]

आलोच्य उपन्यास के घटनाकाल में जहाँ नगरों में स्वतंत्रता के आन्दोलन व्यापक रूप से चल रहे थे, वहाँ ग्रामों में इन आन्दोलनों का कोई प्रभाव नहीं था। वे आन्दोलन के नाम प्र चौक पड़ते थे। वे अपनी घोर अशिक्षा के कारण स्वतंत्रता आन्दोलनों का महत्व समझने में अक्षम थे और उनका राजनीतिक गतिविधियों से कोई सम्बन्ध नहीं था। नेता के भाषण का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं था। आन्दोलन एवं जन-जागरण के जुलूस उनके लिए तमाशा भर थे। बालदेव स्वतंत्रता-प्राप्ति पर जो जुलूस निकाला है, ग्राम वालों के लिए तमाशा बन जाता है। आलोच्य उपन्यास में बालदेव, कालीचरण, बावनदास आदि ग्रामीणों में राजनीतिक चेतना जाग्रत करते हैं।

मेरीगंज गांव में कुल दस्तखत करने लायक पढ़े-लिखों की संख्या दस बताकर औपनिवेशिक शिक्षा व सांस्कृतिक नीति भी लेखक ने उद्धाटित कर दी है। उपनिवेशवाद को पढ़े लिखे नागरिकों की नहीं : अनपढ़ समूहों की जरूरत थी या फिर मैकाले व्यवस्था के अधीन 'बाबू' लोगों की, क्योंकि जब भारतीय सचमुच शिक्षित हो जाते हैं तो डॉ. प्रशांत कुमार की तरह जन सेवा व जनचेतना जगाने में लग जाते हैं, जिससे व्यवस्था को हमेशा खतरा ही रहता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था को अपनी कथा के सहज विकास में बड़े स्वभाविक ढंग से चित्रित किया है।

ज़मींदारों और तहसीलदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार करके लगान वसूल करने के लिए क्रूर दमन का चक्र चलाना, जैसे अनेक प्रसंगों को उपन्यास में अंकित किया है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक जो कायस्थ टोली के मुखिया हैं, के खानदान में तीन पुश्तों से तहसीलदारी चली आ रही है। इस तहसीलदारी से वे तो एक हज़ार बीघे के बड़े काश्तकार बन गए हैं, लेकिन उनकी यह इतनी बड़ी जोत बनी है, गरीब किसानों पर जुल्म के द्वारा। बाढ़ या सूखे से जब गरीब किसान की फसल नष्ट हो जाती है तो वह लगान अदा नहीं कर सकता, लगान अदा नहीं कर सकता तो ज़मीन रेहन रखे और एक बार ज़मीन रेहन रखी तो वह गई बड़े ज़मींदारों के पास। इन गांववासियों ने अपने ही गांव के बड़े ज़मींदारों, साहूकारों की ही गुलामी भोगी है, लेकिन यह ज़मींदार/साहूकार वर्ग पहले से ही अत्याचारी था, कुछ उपनिवेशवादी व्यवस्था ने अपने हित में इन्हें ताकत देकर शोषण व्यवस्था का पुर्जा बनाया है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और विभिन्न राजनीतिक दलों की सक्रियता उन दिनों कांग्रेस पार्टी के अंग के रूप में, लेकिन अधिक जुझारू संघर्ष का बिगुल बजाने वाले दल के रूप में कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी का भी उपन्यास में चित्रण है। जय

प्रकाश नारायण इस दल के नेता थे और वे भी बिहार के ही थे, इसलिए उनका जिक्र भी ससम्मान हुआ है। स्वयं रेणु जयप्रकाश नारायण से प्रभावित थे व उनके आंदोलन के समर्थक भी। गांव में सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व संभालता है- कालीचरण यादव “कॉमरेड कालीचरण और कॉमरेड बासुदेव! सुशलिंग पार्टी! रास्ते में कालीचरण बासुदेव को समझता है, यही पार्टी असल पार्टी है। गरम पार्टी है। किरान्ती दल का नाम नहीं सुना था? बम फोड़ दिया फाटक से मस्ताना भगत सिंह। यह गाना नहीं सुने हो? वही पार्टी है। इसमें कोई लीडर नहीं। सभी साथी हैं, सभी लीडर है।”[2] रेणु ने ‘मैला आंचल’ में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय राजनीतिक शक्तियों का चरित्र अत्यंत सटीक और वस्तुगत ढंग से अंकित किया है।

राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी रही। स्वतंत्रता आन्दोलनों में इसी पार्टी ने प्रमुख रूप से भाग लिया, जेल-यात्राएं की और पुलिस के अत्याचारों को सहा। कांग्रेस से ही अलग होकर सोशलिस्ट पार्टी बनी। इसने किसान और मजदूरों का विशेष पक्ष लिया। इन्हीं दो पार्टियों की हलचल विशेष रूप में ‘मैला आंचल’ उपन्यास में आई है। मेरीगंज गाँव में चुनावों में भाई भतीजावाद और जातिवाद का बोलबाला है। दलबन्दी ने स्वस्थ राजनीति को कुंठित बना दिया है। शक्ति सम्पन्न और पैसे वाला ही चुनाव में उतरने का साहस कर सकता है। डा रामकिरण सिंह संघ के स्वयंसेवकों की लाठी के बल से चुनाव जीतना चाहते हैं। कालीचरण उनके षडयंत्र का भंडाफोड़ देता है भंडारे के समय भी यही जातिवाद सामने आता है। उपन्यास में हम कई पार्टियों को देखते हैं-जनसंघ, सोशलिस्ट, कांग्रेसी, कम्युनिस्ट सभी अपने-अपने दलों के प्रचार कार्य में लगे दिखाई पड़ते हैं। सभी दलितों के हित की बात कहकर सत्ता हथियाना चाहते हैं। जनसंघ के काली ‘टोपी वाले’ संयोजक मुसलमानों का विरोध करके हिन्दु-साम्राज्यवादी स्थापना का स्वप्न देखते हैं। वे हिन्दु- संस्कृति के प्रचार-प्रसार का दावा भरते हैं। साम्यवादी दल का वासुदेव उनको बुद्धू कहता है। बालदेव कांग्रेस का तिरंगा झंडा उठाये फिरता है। गन्दी राजनीति में डाक्टर प्रशांत जैसे समाज-सेवी साम्यवादी होने के संदेह में गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। आलोच्य उपन्यास में राजनीतिक चेतना का जीवन्त आकलन हुआ है। विभिन्न राजनीतिक मतवाद, पार्टियाँ, संगठन और उनकी समस्याएं, वर्ग-संघर्ष आदि का चित्रण विस्तार से हुआ है।

सच्चे देश-भक्त आजादी के लिए जहाँ प्राणों का बलिदान दे रहे हैं, वहाँ अवसरवादी तथा स्वार्थी राजनीतिज्ञ अहिंसा की आड़ लेकर जन-साधारण का शोषण कर रहे हैं। नगरों की तरह ग्रामों में भी राजनीतिक भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है। “बालदेव जैसे अवसरवादी नेता अहिंसा का नारा देकर जनता को प्रभावित करते हैं और अपने त्याग एवं बलिदान का मूल्य ब्याज-सहित वसूल करते हैं। बालदेव राशन की पर्चियां अपने परिचितों में ही बांटता है। बालदेव अहिंसा की आड़ लेकर लक्ष्मी तथा रामदास के अधिकारों के हनन करने वाले पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए भी नहीं हिचकता। इस कार्य में यह कालीचरण के विरोध की भी प्रवाह नहीं करता। वह बावनदास के पत्रों को इसलिए नष्ट करने का प्रयत्न करता है कि इनके प्रकाशित हो जाने पर बावनदास देश-भक्त के रूप में सम्मानित हो जाएगा।”[3] उपन्यास में राजनीतिक भ्रष्टाचार का नग्न रूप सामने आता है। दुलारचन्द कापरा तथा घोटनबाबू जैसे भ्रष्टाचारी, अहिंसा की आड़ लेकर दलबदली जैसे कार्य कर सत्ता हथिया कर देश को नष्ट करने वाले कार्य करते हैं। उनके कुकृत्यों का विरोध करने के कारण ही बावनदास की हत्या होती है।

आलोच्य उपन्यास में स्वतंत्रता के पश्चात जो भ्रष्टाचार राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में फैला, उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। शासक-दल कांग्रेस रही। कांग्रेसी लोग अपने स्वार्थ के लिए भ्रष्टाचार में लिप्त हो गये। नौकरशाही को भी इन लोगों ने भ्रष्ट कर दिया। कांग्रेसी ही नहीं अन्य राजनीतिक पार्टियों की भी यह ही स्थिति रही। कांग्रेसी नेता जन-सेवा भूलकर प्रांत की राजधानी में पड़े रहते हैं। बावनदास कहता है: “हाल क्या सुनाएगा। अब सुनना-सुनाना क्या है। रामकिसुन आश्रम में भी हरिजन भोजन होगा। बिलेकपी कल मर गया। सिवनाथ बाबू आये हैं पटना से। ससकांकजी प्रांती सभापति हो गये हैं, ‘वह भी पटना में ही रहेंगे। सब आदमी अब पटना में ही रहेंगे। मेले लोग हमेशा यहीं रहते हैं। सुराज मिल गया, अब क्या है। छोटन बाबू का राज है। एक कौरी वैमन्न बिलेक मारकेटी के साथ कचेहरी में घूमते रहते हैं। हाकियों के यहाँ दाँत खिटकाते रहते हैं। सब चौपट हो गया।”[4] चुनाव की स्थिति देखिए: “छोटनबाबू की बात मत पूछिए- अब तो घर-घरान सहित कांग्रेसी हो गए हैं।” नहीं बालदेव छोटनबाबू जैसे लोगों की बात जाने दो। यह बेमारी ऊपर से आई है। यह पटनियां रोग है- अब तो ओर धूमधाम से फैलेगा। भूमिहार राजपूत, कैथ यादव, हरिजन सब लड़ रहें हैं। अगले चुनाव में तिगुना मेले चुने जायेंगे। किसके आदमी ज्यादा चुना जाए। इसी की लड़ाई है यदि राजपूत पार्टी के लोग ज्यादा आए तो सबसे बड़ा संतरी भी राजपूत होगा।

परसों बात हो रही थी आश्रम में। छोटनबाबू और अमीन बाबू बतिया रहे थे- गांधी जी का भस्म लेकर ससांक जी आएंगे। छोटेबाबू बोले ज़िला का कोटा कलस जिला सभापति को ही लाना चाहिए। ससांक जी क्यों जा रहे हैं इसमें बहुत बड़ा रहस्य। हा हा हा हा।”[5]

नेताओं ने नौकरशाही को भी भ्रष्ट कर दिया है। दोनों की मिली भक्त देश का बहुत बड़ा अहित कर रही है। “हां गाड़ियां आयेगी। पचासों गाड़ियां। कपड़े और चीनी और सीमेंट से लदी हुई गाड़ियां-जिसने खबर दी है उसे- उसका नाम बस जान जाने पर भी नहीं खोलेगा। बावन ने गांधीजी की कसम खाई है। बेचारा गरीब-उसकी नौकरी चली जावेगी। कटहा के दुलारचन्द कापरा वही जुआ वाली कम्पनी है जिसकी जुए की दुकान पर नेवीलाल, भालो बाबू और बान ने फारबिसगंज मेला में पिकेटिन किया था। जुआ भी नहीं एकदम पाकिटकाट खेला करता था और मीरगिया लड़कियों, मिरगिया दारू-बाजा का कारबार करता था। आज कटहा थाना कांग्रेसी में सिकरेटरी है। उसी की गाड़ियाँ हैं। सपलाई मिसापिट्टर और कटहा थाना के दारोगा और यहाँ कलीमुद्दीन के नाकावाले हवालदार मिलाकर रकम आठ आना और इधर दुलारचन्द कापरा रकम आठ आना। फिर उधर के हाकिमहुक्कामों को भी इस तरह हिस्सा मिलेगा। लाखों रूपया का कारबार है।”[6]

बावनदास प्रचार करता है कि कांग्रेसी सरकार ने जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी है। “कालीचरण कहता है कि जब तक यह खबर ‘लाल पताका’ अखबार में न निकले तब तक वह इसे सत्य नहीं मान सकते। वह इसके विषय में कल ही सेक्रेटरी साहब से पूछेगा। सोशलिस्ट पार्टी के लोग चन्दे के पैसों को अपने काम में ले लेते हैं। सनिचरा ने मेम्बरी के पैसों से सोशलिस्ट काट कुर्ता बनवा लिया है।”[7] यहाँ के लोग सुख-संवाद सुनकर भी कहते हैं-जुलुम बात! जुलुम हंसी, जुलुम खुसी! बंगला के भीषण सुन्दर की तरह।

‘मैला आंचल’ उपन्यास में कांग्रेस, सोशलिस्ट, जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टी की कारगुजारी भी सामने आई है। प्रमुख हलचल दो ही पार्टियों की है- राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी की हलचल। कांग्रेस पार्टी- राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी ने स्वतंत्रता-आंदोलन में अपना महान योगदान दिया। सन 1920 के पश्चात महात्मा गांधी ही कांग्रेस के प्रतीक बन गये। कांग्रेस के सत्याग्रहियों पर किस प्रकार अत्याचार हुए इसका रूप निम्नलिखित उदाहरण में स्पष्ट दिखाई देता है-

“..लेकिन प्यारे भाईयो, हमने भारत माता का नाम महात्मा जी का नाम लेना बन्द नहीं किया, तब मलेटरी ने हमको नाखून में सुई गढ़ाया, तिसपर भी हम इसबिस (चू-चपड़) नहीं किया। आखिर हारकर जेहलखाना में डाल दिया। आप लोग तो जानते ही हैं कि सुराजी लोग जेहल को क्या समझते हैं- जेहल नहीं, ससुराल। यार हम बिहा करने जायेंगे। मगर जेहल में अंग्रेज सरकार हम लोगों को तरह-तरह की तकलीफ देने लगा। भात में कीड़ा मिला कर देता था। घात-पात की तरकारी देता था। बस हम लोगों ने भी अनसन शुरू कर दिया। पियारे भाईयों ! पांच दिनों तक निरजला अनसन। उसके बाद कलक्टर, इसपी, सब आया, मांग पूरा कर दिया। खाने को दूध हलुआ दिया।”[8]

कांग्रेस ने सन १९५० में सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया। महात्मा गांधी ने डांडी मार्च किया कांग्रेस के लोगों ने नमक बनाकर जगह-जगह नमक कानून तोड़ा। उदाहरण देखते हैं- “प्रातः काल उठके देखते हैं कि गांव-भर के लौण्डे इसी झण्डा-पत्तखा लेकर इनकिलास जिन्दाबाद करतए हुए गांव में घूम रहे हैं। दूसरे ही दिन चार लौरी में भरके गोरा मलेटरी आया और सारे गांव को जला-पका लूट-पीटकर एक ही घण्टा में ठण्डा कर दिया। पचास आदमी को गिरिफ्त किया। दो को तो मारते-बेहोस कर दिया। एक को कीरीच भोंक दिया।”[9]

कांग्रेसी सरकार मेरीगंज में चर्खा सेन्टर खोलती है। जमींदारी उन्मूलन का कानून पास करती है। प्रश्न यह है कि जमींदारी प्रथा समाप्त होने पर कांग्रेसी जमींदार क्या करेंगे। इसका उदाहरण मैला आंचल में दिखाई यहाँ पड़ता है- “जमींदारी प्रथा खत्म हो जायेगी ? तब ये कांग्रेसी जमींदार लोग क्या करेंगे ? सब मिल खोलेंगे शायद इसलिए प्रायः हरेक छोटे-बड़े लीडर के साथ एक मारवाड़ी घूमता है।”[10]

आलोच्य उपन्यास में सोशलिस्ट पार्टी की हलचल बहुत उभरी है। सोशलिस्ट पार्टी की हलचल कांग्रेस पार्टी की हलचल पर छा जाती है। इसका विश्लेषण हम आगे करेंगे। सोशलिस्ट कांग्रेस की आलोचना उसे पूंजीवादियों की पार्टी तथा क्रांतिदल की ‘बम-फोड़क’ दल कहकर करते हैं- “कामरेड कालीचरण और कामरेड वासुदेव!.. सुशर्लिंग पार्टी !..रास्ते में

कालीचरन वासुदेव को समझाता है, “यही पार्टी असल पार्टी है। गरम पार्टी है। ‘किरान्तीदल’ का नाम नहीं सुना था?...“बम फोड़ दिया फाटक से मस्ताना भगत सिंह, यह गाना नहीं सुने हो? वही पार्टी है। इसमें कोई लीडर नहीं। सभी साथी हैं, सभी लीडर हैं। सुना नहीं!”[11] सोशलिस्ट पार्टी अपनी पार्टी को ही किसानों और गरीबों की पार्टी कहती है। सोशलिस्ट आंदोलन बड़े जोरों से मेरीगंज अंचल में चलता है- “यह जो लाल झंडा है, आपका झंडा है, जनता का झंडा है, इन्कलाब का झंडा है। इसकी लाली उगते हुए आफताब की लाली है, खुद आफताब है। इसकी लाली, इसका लाल रंग क्या है?- रंग नहीं! यह गरीबों, महरूमों, मजलूमों, मजबूरों, मजदूरों के खून में रंगा हुआ झंडा है।”[12]

वर्तमान राजनीतिक संदर्भ में मैला आँचल की प्रासंगिकता पूर्णरूप में देखने को मिलती है। फणीश्वरनाथ जी ने जो राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया है वह आज की राजनीति में भी वैसे ही पाई जाती हैं जैसे कि मैला आंचल में पाई गई हैं।

भारत के ग्रामों में आज भी राजनीति के प्रति अज्ञानता भरी पड़ी है। लोग अपने अधिकारों का प्रयोग करना ही नहीं चाहते जब किसी कार्य को पूरा करवाने की बात होती है तो कहते हैं यह तो हमें अधिकार मिला ही नहीं परन्तु जो सबसे अधिक मूल्यवान अधिकार, देश की सत्ता को चुनने का मिला हुआ है उसका सही ढंग से उपयोग नहीं किया जा रहा। लोगों की यही मान्यता रहती है कि हमारे एक मत से क्या फर्क पड़ेगा परन्तु उसी एक मत से ही गलत आदमी/ नेता सत्ता में प्रवेश कर जाता है और लोगों का राजनीतिक शोषण करता है। आज भी भारत के गाँवों की यही स्थिति है जो ‘मैला आँचल’ लिखते समय ‘फणीश्वरनाथ रेणु’ जी ने चित्रण किया है। आज तो मीडिया के जरिए लोगों को सचेत भी किया जाता है और सही व्यक्ति के चुनाव की अपील भी की जाती है। यह कार्य किसी हद तक सफल भी हो पाया है, परन्तु ग्रामों की हालत आज भी वैसी की वैसी है जो ‘मैला आँचल’ उपन्यास में मेरीगंज ग्राम की है।

आज की राजनीति का तो यह फ्रैशन हो गया है कि चुनाव आने पर नेताओं द्वारा दलबन्दी और दलबदली की जाती है। जब एक पार्टी से किसी नेता के स्वार्थों की पूर्ति नहीं हो पाती तो वह दूसरी पार्टी में भागने या मिल जाने को तत्पर रहता है ‘रेणु’ जी के ‘मैला आँचल’ में भी ऐसी घटनाएं देखने को मिलती हैं। जब भारत ने स्वतन्त्र सत्ता सभाली है तब से ही राजनीति के क्षेत्र में दलबन्दी और दलबदली जारी है। भारतीय राजनीति की अगर बात करें तो यह राजनीति दलों और दल बदली से बहुत प्रभावित है। जब एक दल समाज के लोगों की मांगे पूरी करने में असहाय होने लगी तो दूसरे दलों के साथ मिलकर देश को चलाने वाली राजनीति सामने आई। समाज में सत्तधारी राजनीति के प्रति असंतोष बढ़ने लगा इसलिए समाज में जातिपरक, धर्मपरक, क्षेत्रीपरक एवं व्यक्तिपरक नेतृत्व पर आधारित जनराजनीतिक संस्कृति की नई गंगा बहने लगी।

भारतीय राजनीति में दलबदली और दलबन्धी वाली समस्या की कमी नहीं है। यह एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आई है। फिर चाहे देश के संविधान के द्वारा बांधा क्यों न लगाई गई हो परन्तु फिर भी यह दलबदली और दलबन्धी ने इस स्तर पर अपना रंग दिखाया है कि पूर्ण राजनीति को हिला कर रख दिया है। भारतीय राजनीति में अनेक प्रकार के दलों को देखा जा सकता है- क्षेत्रीय या राज्य-स्तरीय दल, जातीय आधार पर दल आदि। इन दलों के समर्थकों का मानना है कि अगर यह दल अपनी प्रतिक्रिया न दिखाये तो सरकार अपने कर््यों को पूर्णरूप से अंजाम तक नहीं पहुंचाएगी। परन्तु आज इनका यह मत अलग ही दिशा की ओर जा रहा है। यह नेताओं की आपसी मिली भक्त के कारण होने लगा है और अपनी पार्टी के लिए किसी भी हद तक घिरना ही इन दलों का काम रह गया है। कहीं न कहीं इन्हीं धार्मिक समूहों और दलों के अत्यंत उग्र रूप के कारण राजनीति का रूप पूर्ण रूप से बदलता जा रहा है।

आज की राजनीति का जो सबसे दूषित परिणाम है वह है भ्रष्टाचार। यह राजनीतिक दलों की देन है। अलग-अलग दलों द्वारा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सदैव भ्रष्टाचार को पोषित-पल्लवित किया जाता है। राजनीतिक दलों को अपने समस्त घोषित कार्यक्रमों की पूर्ति करने के लिए बेशुमार धन की जरूरत होती है और चुनावों में अपनी पार्टी के लिए प्रचार आदि करने के लिए गलत तरीकों से धन इकठा करने लगते हैं। इससे भ्रष्टाचार की वृद्धि के लिए पुख्ता आधार मिलता है। आम चुनावों के लिए जो खर्च निर्धारित किया जाता है उससे भी अधिक मात्रा में चुनावों में खर्च किया जाता है क्योंकि आर्थिक रूप से कमज़ोर मतदाताओं का मत अपने पक्ष में करना और गरीब लोगों का शोषण करने के लिए उनको अधिक खवाब दिखाना आदि के लिए अधिक धन की जरूरत होती है। उसी धन पूर्ति के लिए दलों द्वारा राजनीति को पूर्णरूप से भ्रष्ट किया गया है। भारत के सभी राजनीतिक दल आज गंभीर रूप से भ्रष्टाचार की समस्या से ग्रसित हैं। चुनावी प्रक्रियाओं के बेहद खर्चीले होने की वजह से राजनीतिक दलों तथा उसके नेतृत्व में काले धन को इकठा करने की प्रवृत्ति की ओर विशेष झुकाव देखा जा रहा है, इससे जहाँ एक ओर दल में ईमानदार तथा उन्नत चरित्र वाले नेताओं का अभाव हो गया है, वहीं दूसरी ओर ऐसे नेताओं की नीतियों व

कार्यक्रमों एवं जनसेवा से ज्यादा काले धन के अर्जन के प्रति होती जा रही है। पार्टी संचालन के लिए भी दलों को बड़ी राशि की जरूरत होती है। इसी कारणवश पूंजीपतियों से धन इकठा करने के लिए उनके उमीदवारों के रूप में राजनीति में लाया जाता है और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जाता है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार ने हिंसा को जन्म दिया है। जहाँ देश भक्त देश की आजादी के लिए अपने प्राण दे गए वहीं ये राजनीतिज्ञ अहिंसा का ढोंग करके अपने स्वार्थों की पूर्ति कर गरीबों का शोषण करते हैं। अहिंसा का प्रचार करने के लिए पहले हिंसात्मक कार्य करवाते हैं ताकि उस हिंसा को रोकने का पाखण्ड कर लोगों के दिलों में अपने लिए अच्छाई कायम रख सकें। हमारे देश में स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक भ्रष्टाचार चरम सीमा पर पहुँच गया है। जो लोग अनैतिक थे, जुआ का अड्डा चलाते थे, देश-द्रोह करते थे, उनको ही राजनीतिक पार्टियों में बड़े-बड़े पद मिल जाते हैं। वे सरकारी अफसरों से मिलकर खूब भ्रष्टाचार करते हैं और अपनी जेबें भरते हैं। वे चोरी-छिपे भारत का माल पाकिस्तान भेजने में भी नहीं हिचकते। भ्रष्टाचार का यह राजनैतिक रूप बावनदास के प्रसंग में भी सामने आता है। कलीमुद्दीन घाट से माल से भरी हुई गाड़ियां जो पाकिस्तान जा रही थीं, रोकता है। परन्तु गाड़ी से कुचलकर उसका अन्त कर दिया जाता है और उसकी लाश को नदी में फेंक दिया जाता है। आज के नेताओं में भी भ्रष्टाचार इस हद तक बढ़ गया है कि उन्हें अपने स्वार्थों के आगे किसी की जान तक की प्रवाह नहीं रहती, वे बस अपना उल्लु सीधा करने की आड़ में लगे रहते हैं।

मैला आँचल एक आँचलिक उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार 'रेणु' जी का उद्देश्य मेरीगंज आँचल की समस्त हलचल को चित्रित करना रहा है। राजनैतिक हलचल में मेरीगंज गाँव एक प्रतीक के रूप में सामने आता है क्योंकि समस्त देश के प्रत्येक आँचल में इसी प्रकार की राजनैतिक हलचल रही थी। 'मैला आँचल' उपन्यास का आरंभ ही राजनीतिक पृष्ठभूमि से होता है और उपन्यास का अंत भी राजनीतिक घटनाक्रम के एक दुखांत मोड़ से होता है। मैला आँचल में लोगों को जिस प्रकार राजनीतिक मामलों की कोई जानकारी नहीं वैसे ही आज के समाजिकों को भी राजनीति के बारे में अज्ञानता ही पाई जाती है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और विभिन्न राजनीतिक दलों की सक्रियता उन दिनों कांग्रेस पार्टी के अंग के रूप में, लेकिन अधिक जुझारू संघर्ष का विगुल बजाने वाले दल के रूप में कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी का भी उपन्यास में चित्रण है। वह समस्याएँ आज भी जस-की-तस पाई जाती हैं फिर चाहे वे चुनाव में दलबंदी, थोथा अहिंसावाद, भ्रष्टाचार, आंदोलनों की सक्रियता, धर्म में राजनीति आदि। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान राजनीतिक संदर्भ में मैला आँचल की प्रासंगिकता पूर्णरूप में देखने को मिलती है और देश की स्वतंत्रता के बाद पनपे हुए भ्रष्टाचार, दलबन्धी, अहिंसावाद का ढोंग, धर्म और राजनीति का व्यापक रूप सामने आ गया है।

संदर्भ-ग्रन्थ :

1. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-११
2. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-२२५
3. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-१६६
4. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-२७
5. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-३३०
6. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-१९५
7. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-३०९
8. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-२२
9. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-१९५
10. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-१९५
11. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-१८५
12. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ-११४